RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 50, अंक : 6 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 7 मई, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 6, 4-7 मई 2023 तदनुसार 24 वैसाख, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

हम अपनी आत्मा में आप की उपस्थिति का बोध करते रहें

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

न तं विदाथ य इमा जजान,
अन्यद् युष्माकम् अन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप,
उक्थशासश्चरन्ति।।

ऋग्वेद १०-८२-७

शब्दार्थ-न = नहीं, **तम्** = उसको, **विदाथ** = तुम जानते हो, **यः** = जो ईश्वर, **इमा** = इस संसार को, **जजान** = बनाने वाला है, **अन्यत्** = तुम उससे अलग हो गये हो, **युष्माकम्** = ईश्वर और तुम्हारे, **अन्तरम्** = बीच की दूरी, **बभूव** = बढ़ गई है। तुम तो, **निहारेण** = अज्ञानरुपी, **प्रावृता** = कोहरे से ढ़के हुवे, **जल्प्या** = व्यर्थ बातें करने वाले, **असुतृपः** = स्वार्थी हो कर, **उक्थशास** = विषय भोगों की पूर्ति के लिए, **चरन्ति** = उन्हीं कर्मों को करने वाले बन गये हो।

भावार्थ-दार्शनिक सत्य सिद्धान्तों से अनभिज्ञ केवल रूप, रस आदि पाँच भौतिक विषयों में आसक्त, प्रकृति पूजक, नास्तिक व्यक्ति आज अपूर्ण विज्ञान, कुतर्क व हेत्वाभासों को प्रस्तुत करके परम पावन परमेश्वर की सत्ता का निषेध कर रहे हैं और आस्तिकों की धार्मिक मान्यताओं का खण्डन करने का भी प्रयास कर रहे हैं। सर्वत्र यह मान्यता विस्तृत होती जा रही है कि ''ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है, वह तो एक कल्पना मात्र है। यदि कोई ईश्वर नामक पदार्थ संसार में है भी तो उसकी हमारे जीवन में कोई उपयोगिता वा आवश्यकता नहीं हैं।'' इतना ही नहीं कुछ नास्तिकों ने तो दुस्साहस करके ईश्वर को सिद्ध करने वालों को लाखों रुपये पुरस्कार के रूप में देने तक की घोषणाएँ भी कर दी हैं। इन सबका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश मनुष्यों के विचारों व व्यवहारों में नास्तिकता की जड़ें गहरी और गहरी होती जा रही हैं।

कोई भी वस्तु यथा मकान, रेल, घड़ी आदि बिना बनाने वाले के नहीं बनती, चाहे हमने मकान, रेल, घड़ी आदि बनाने वाले को अपनी आँखों से न भी देखा हो तो भी उसके बनाने वाले की सत्ता को मानते हैं। ठीक इसी प्रकार से मनुष्य, पशु, पक्षी आदि शरीरों, पृथ्वी, सूर्य आदि पदार्थों को बनाने वाला ईश्वर है, ये अपने-आप नहीं बन सकते हैं। जो मनुष्य इस संसार और संसार के पदार्थों को बनाने वाले ईश्वर को ठीक प्रकार से जान नहीं पाता है, जिन मनुष्यों के मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा, विश्वास, निष्ठा बन नहीं पाते हैं वे ही व्यक्ति ईश्वर का खण्डन करते हैं। खण्डन ही नहीं बल्कि अनेक प्रकार के कुतर्क और हेंत्वाभास, छल आदि का प्रयोग करके जन-सामान्य को ईश्वर से विमुख करते रहते हैं। वेद कहता है कि इन नास्तिक लोगों की बुद्धि कुहरे से ढ़की होती है। जैसे घने कुहरे में पास की वस्तु भी दिखाई नहीं देती है, वैसे ही आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित आध्यात्मिक ज्ञान का अभाव होने से बुद्धि पर नास्तिकता रूपी कोहरा छा जाता है और वे अपने भीतर परमात्मा की अनुभूति नहीं कर पाते हैं।

नास्तिकता के कारण ये लोग न केवल ईश्वर का खण्डन करते हैं अपितु पुनर्जन्म, कर्मफल, धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य आदि ईश्वरीय विधि-विधानों के प्रति श्रद्धा न होने के कारण ये स्वछन्द होकर व्यर्थ की बकवास करते हैं। इतना ही नहीं अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक स्वार्थों की पूति के लिए छल, कपट, अन्याय, पक्षपात, रिश्वत आदि कुछ भी अनैतिक कर्म करने में नि:संकोच तत्पर हो जाते हैं। इन का उद्देश्य मात्र इन्द्रियों की विषय तृष्णाओं की पूर्ति करना होता है।

कुछ लोग लोक लज्जा की दृष्टि से लोगों को यह दर्शाते रहते हैं कि हम ईश्वर को मानते हैं। औपचारिकता के बाह्य आडम्बरों को निभाने में विवश हुए ऐसे नामधारी ईश्वर भक्त संस्कृत श्लोकों का पाठ भी करते हैं, मन्त्रों का जप भी करते हैं, माला भी घुमाते हैं, यज्ञ हवन भी करते हैं, तीर्थ यात्राएँ भी करते हैं, दान दक्षिण भी देते हैं, सत्संग, भजन, कीर्तन, जगरातों में भी जाते हैं, गाते हैं, बजाते हैं, नाचते भी हैं। कुछ ज्यादा बुद्धिमान् व्यक्ति अध्यापन, लेखन, प्रवचन, भाषण, कथा, उपदेश का कार्य भी करते हैं, किन्तु इन सब बाह्य दिखाई देने वाले पुण्य कार्यों को करते हुए भी वे अन्दर आत्मा में प्रवेश नहीं पाते हैं। अन्त:करण में विद्यमान परमेश्वर के बीच इनकी दूरी बनी रहती है। मोह-माया रूपी प्राकृतिक पदार्थों का आवरण आत्मा और परमात्मा के बीच दीवार बनकर खड़ा रहता है।

हे प्रभो! हमारी हार्दिक इच्छा है कि हम सारी नास्तिकता, आडम्बर, मिथ्या परम्पराओं का पूर्णत: परित्याग करके सच्ची श्रद्धा के साथ आपका तन्मयता से ध्यान करें जिससे आपकी और हमारी दूरी समाप्त हो जाए। हम अपनी आत्मा में आप की उपस्थिति का बोध करते रहें तथा यह बोध हर दिन, हर घण्टे, हर पल मन में बना रहे और आपके निर्देश संकेत के अनुसार ही अपने जीवन को चलाकर पूर्णानन्द के भागी बनें।

कर्म का सिद्धान्त

ले.-श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०

प्रश्न (१)-कर्म के सिद्धान्त का मूलाधार क्या है?

उत्तर-कर्म के सिद्धान्त दो दार्शनिक सिद्धान्तों पर आधारित हैं। प्रथम जीव कर्म करने में स्वतंत्र और फल पाने में अपने कर्म के आश्रित हैं। दूसरा फल का दाता ईश्वर है, जो अपनी व्यवस्था के अनुसार जीव के किये हुये कर्मों के अनुपात से फल देता है।

प्रश्न (२)-ईश्वर न्यायकारी है, या दयालु? और उसकी दया या न्याय का कर्म के सिद्धान्त से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर:-ईश्वर न्यायकारी है; क्योंकि ईश्वर जीव के कर्मों के अनुपात से ही उनका फल देता है न्यून या अधिक नहीं।

परमेश्वर दयालु है, क्योंकि कर्मों के फल देने की व्यवस्था इस प्रकार की है जिससे जीव का हित हो सके। शुभ कर्मों का अच्छा फल देने में भी जीव का कल्याण है और अशुभ कर्मों का दण्ड देने में भी जीव का ही कल्याण है। इसलिये कर्म-फल का सिद्धान्त ईश्वर को दयालु भी प्रमाणित करता है और न्यायकारी भी। दया का अर्थ है जीव का हितचिंतन। और न्याय का अर्थ है उस हितचिंतन की ऐसी व्यवस्था करना कि उसमें तनिक भी न्यूनता या अधिकता न हो।

इसको दूसरे प्रकार से सोचिये। यदि जीव के कर्मों की अपेक्षा अधिक फल दिया जाए तो जीव को अशुभ कर्म करने में उत्साह बढ़ेगा। इससे जीव का अनिष्ट होगा। यह दया न होगी और न न्याय। क्योंकि इससे जीव का अहित होगा। जिस काम का परिणाम अहित हो, वह न तो दया है और न न्याय। अमुक कर्म का कितना फल न्यायाधीश दया से प्रेरित होकर न्याय करता है। वह समझता है कि यदि न्याय न करूंगा तो अहित होगा। यह अहित ही निर्दयता है।

कल्पना कीजिये कि एक परीक्षक को उसके कामों से अधिक अंक दे देता है, मूर्ख लोग इसको "दया" कहेंगे। परन्तु प्रथम तो यह अन्य परीक्षार्थियों के साथ अन्याय है और उनके साथ निर्दयता भी। दूसरे इस परीक्षार्थी के साथ भी निर्दयता हुई; क्योंकि उसका स्वभाव बिगड़ गया। ईश्वर दयालु भी है और न्यायकारी भी। इसलिये वह कर्मों का फल उनके अनुपात से ही देता है, कम या अधिक नहीं।

प्रश्न (३)-जीव का हित क्या है? और उसके कर्मों का इस हित से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर:-जीव का हित है अपने स्वरूप को पहचानना। जीव संसार में आकर अपने स्वरूप को भूल जाता है। वह अपने को जड़ या जड़ पदार्थों के आश्रित समझ लेता है। इस बेसमझी से जो कर्म किये जाते हैं, वे अशुभ होते हैं। क्योंकि जितने अधिक ऐसे कर्म होते हैं उतना ही जीव उनमें फँसकर अपने स्वरूप को अधिक भूल जाता है। परन्तु जितने कर्म ऐसे हैं जिनसे उसको अपने स्वरूप का परिज्ञान हो, वे शुभ हैं।

प्रश्न (४)-जीव शुभ या अशुभ कर्म क्यों करता है।

उत्तर:-कर्तृव्य जीव का स्वाभाविक गुण है। वह बिना कुछ किये रह ही नहीं सकता। जैसे आग कभी अपनी गर्मी को छोड़ नहीं सकती।

प्रश्न (५)-जब कर्तृत्व जीव का गुण है तो वह अशुभ कर्म क्यों करता है?

उत्तर-कर्म के लिये ज्ञान चाहिये। जीव स्वभाव से अल्पज्ञ है। उसको पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये ज्ञान प्राप्ति की आवश्यकता है। यथार्थ ज्ञान न होने से वह भूल कर बैठता है। जैसे छोटा बच्चा दीपक की लौ पकड़ कर अपना हाथ जला बैठता है।

प्रश्न (६)-ईश्वर की व्यवस्था जीव के कर्म-फल द्वारा उसके हित, अहित का कैसे सम्पादन करती है?

उत्तर-यह तो प्रत्यक्ष है कि हमारी भूलें हमको सचेत करती हैं। एक बार जल कर बच्चा दोबारा दीपक की लौ नहीं पकड़ता, क्योंकि उस के अज्ञान में कुछ कमी हो गई। ऐसा ही सब कर्मों का हाल है।

प्रश्न (७)-परमेश्वर कर्मों का फल किस रूप में देता है?

उत्तर-कर्मों का फल तो अन्ततोगत्वा सुख या दुःख के रूप में ही होता है। परन्तु इस सुख या दुःख को देने के अनेक निमित्त हैं। वह निमित्त न सुख हैं न दुःख, परन्तु सुख या दुःख के साधन अवश्य हैं। यह जानना कठिन है कि अमुक निमित्त कब दुःख का साधक है और कब सुख का। यह व्यवस्था जटिल है। पूर्ण रूप से उसे ईश्वर ही जानता है। परन्तु विद्वान् भी अपने अनुभव से तर्क द्वारा इसको जान सकता है।

प्रश्न (८)-बात स्पष्ट नहीं हुई। उदाहरण से समझाइये?

उत्तर-सिर दबाना एक निमित्त है। इससे सुख और दुःख दोनों हो सकता है। समय और परिस्थिति के अनुसार ही इसका निर्णय होगा। इसी प्रकार बहुत सी घटनायें हैं, जो कभी एक मनुष्य के सुख का साधन होती हैं और कभी दुःख का और कभी एक मनुष्य के सुख का साधन होती हैं और दूसरे के दुःख का। ऐसे उदाहरण सबको मालूम हैं।

प्रश्न (९)-ईश्वर जीव को उसके कर्मों का फल देता है अथवा अन्य जीवों के कर्मों का भी?

उत्तर-ईश्वर जीव को उसी के कर्मों का फल देता है अन्य का नहीं। क्या परीक्षक परीक्षार्थी के अतिरिक्त किसी अन्य परीक्षार्थी के किये हुये कामों के लिये भी अङ्क देगा? ऐसा करना तो अन्याय होगा। अर्थात् कर्म किया देवदत्त ने और उसका फल मिले यज्ञदत्त को। यह दया भी न होगी, क्योंकि जीव के भविष्य-निर्माण का आश्रय दूसरे व्यक्ति पर होगा। यदि एक जीव के कर्मों का फल दूसरे को मिलने लगे तो व्यवस्था भी न रहेगी। अन्य जीव तो असंख्य हैं। किस किस के कर्मों का फल किस किस को दिया जाएगा? यदि सोहन के काम पर मोहन को अङ्क दे दिये गये तो सोहन के साथ अन्याय होगा। अतः ईश्वर किसी को उसी के कर्मानुसार फल देता है, दूसरे को नहीं।

प्रश्न (१०)-क्या ईश्वर की कर्म-फल के सम्बन्ध में कोई नियत व्यवस्था है या ईश्वर जब जैसा चाहे करता है?

उत्तर-ईश्वर की सभी व्यवस्था नियत और अपरिवर्तनशील हैं। उसमें किंचित् भी अदल बदल नहीं होती। समस्त जीवों को उसी व्यवस्था के अनुसार फल मिलता है।

प्रश्न (११)-यदि व्यवस्था-रूपी मशीन पूर्णतया नियत है तो ईश्वर को मानने की क्या आवश्यकता? सृष्टिक्रम हमको व्यवस्था की सूचना तो देता है; परन्तु ईश्वर को तो हम नहीं देखते? हमको प्रयोजन व्यवस्था से है, व्यवस्थापक से नहीं, यदि ईश्वर को न भी मानें तो व्यवस्था वैसी ही रहेगी। उसमें परिवर्तन न होगा।

उत्तर-यह ठीक है कि व्यवस्था निश्चित और अपरिवर्तनशील है। परन्तु जो मनुष्य व्यवस्था को स्वीकार करता और व्यवस्थापक को छोड़ देता है, वह अज्ञान का दोषी है। अज्ञान बड़ा भारी दोष है। इसका परिणाम बुरा होता है। व्यवस्था को भूल जाने से व्यवस्थापक-शून्य जड़ व्यवस्था को मानते हैं, वह अपने चेतन स्वरूप को भूल कर जड़-बुद्धि हो जाते हैं। उनमें व्यवस्थापक के शुभ गुणों का संचार नहीं होता।

यह माना कि व्यवस्था के अनुसार जीव को अपने कर्मों का उतना ही फल मिलेगा, चाहे व्यवस्थापक पर विश्वास किया जाए अथवा नहीं। परन्तु व्यवस्थापक के न मानने से अथवा उसे भुला देने से सबसे बड़ी हानि यह होगी कि जीव की गुणशीलता कम हो जाएगी और जीव के भावी ज्ञान तथा कर्म पर उसका प्रभाव पड़ेगा। न्यायाधीश तो न्याय ही करेगा, चाहे दूसरा उसके व्यक्तित्व को स्वीकार करे या न करे। परन्तु तात्कालिक कर्म-फल की प्राप्ति के अतिरिक्त न्यायाधीश के व्यक्तित्व का सम्पर्क भी एक चीज़ है, जिससे वह मनुष्य वंचित रह जाएगा जो केवल तात्कालिक न्याय से ही सम्बन्ध रखना चाहता है और न्याय की पृष्ठ पर न्यायाधीश को देखना नहीं चाहता।

कालिदास के काव्यों से कालिदास बड़ा है। काव्यों से कालिदास की उस महत्ता का भी

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

मैंने पितृ ऋण से उऋण का क्या प्रयास किया?

हम सब संसार में आते ही ऋणी हो जाते हैं, उन ऋणों से उऋण होने की हर संभव कोशिश भी करते हैं। उन ऋणों में से एक ऋण है, पितृ ऋण और उससे उऋण होने का सरल उपाय है श्रेष्ठ संतान का निर्माण। क्या हमने संसार को श्रेष्ठ संतान दी है। संसार में दो प्रकार के माता-पिता होते हैं। एक वह जो अपने हाथों से सन्तान को अमृत पिलाते हैं और दूसरे वह जो अपने हाथों से सन्तान को विष पिलाते हैं। अब प्रश्न पैदा होता है कि अमृत पिलाने वाले माता-पिता कौन से हैं? जो बच्चों को बचपन से ही अच्छे संस्कार देना प्रारम्भ कर देते हैं। यदि बच्चा कोई कुचेष्टा करता है या अनावश्यक जिद्द करता है तो वह बालक को दण्ड़ देने में जरा भी संकोच नहीं करते। जो अपने बच्चों की प्रत्येक गतिविधि पर नजर रखते हैं, उसके द्वारा किए कार्य की समीक्षा करते हैं, ऐसे माता पिता अपनी संतानों को अमृत पिलाते हैं। उनकी संतानें फिर कुमार्ग पर नहीं जाती और सदा सुमार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं। प्राय: देखा जाता है कि वह अधिकतर परिश्रमी और पुरूषार्थी हुआ करते है और शिक्षाकाल में उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचते हैं। ऐसी संतानें न केवल माता पिता का नाम रोशन करती हैं बल्कि देश के लिए भी उनका जीवन प्रशंसनीय होता है और वे देश के अच्छे नागरिक बनकर देश की उन्नति और तरक्की में अपना योगदान देते हैं। धन्य हैं ऐसे माता-पिता जो बच्चों के निर्माण करने में अपनी सब सुख-सुविधाओं को त्याग कर अपना जीवन साधनामय बनाते हैं। ऐसे माता-पिता अपनी दिनचर्या ऐसे बनाते हैं जो संतान के लिए प्रेरणादायक बन जाती है। संतान व्यवहार की सभी बातें जैसे समय पर सोना, समय पर जागना, समय पर अपने सभी कार्य सम्पन्न करना, खान-पान पर ध्यान देना आदि सभी बातें संतान पर प्रभाव ड़ालती हैं।

लोग अक्सर कहा करते हैं कि बच्चे हमारा कहना नहीं मानते और अपनी मनमानी करते हैं। उन लोगों से मैं पूछना चाहता हूं कि उन्होंने बच्चों के निर्माण के लिए कौन सा कष्ट सहन किया है, कौन से अच्छे संस्कार उन्होंने संतानों को दिए हैं, उनकी दिनचर्या को कैसा बनाया है? जिस माता-पिता का जीवन और उनकी दिनचर्या नियमित नहीं होती, जो भोग विलास में पड़कर अपना जीवन बिताते हैं। ऐसे माता-पिता की संतान कभी संस्कारी नहीं बन सकती। ऐसे माता-पिता बाद में पछताते हैं जब उनकी संतान उनके कहने से बाहर हो जाती है। मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरूषो वेद अर्थात् जब उत्तम शिक्षक अर्थात् पहले माता, दूसरे पिता और तीसरे आचार्य मिल जाए तभी बच्चा जीवन के हर क्षेत्र में सफलता को प्राप्त करता है। वे कुल धन्य हैं जिनके माता पिता धार्मिक और विद्वान् हैं। जितना माता से संतानों को लाभ पहुंचता है, उतना और किसी से नहीं। क्योंकि बच्चों का जीवन प्रभात माता की गोद में गुजरता है। वास्तव में बच्चे की शिक्षा तो गर्भाधान से ही आरम्भ हो जाती है। माता को अति उचित है कि गर्भाधान काल में अपनी दिनचर्या, अपना खान-पान ऐसा बनाएं जिससे गर्भ के अन्दर बच्चे के ऊपर अच्छे संस्कार पड़े। संतान जो कुछ भी है, वह अपने माता पिता के आचार, विचार, आहार, व्यवहार और संस्कार का प्रतिबिम्ब है। माता-पिता के आचार विचार का प्रभाव संतान पर अवश्य पड़ता है। माता चाहे तो बालक को शूरवीर, धीर, गम्भीर, धर्मात्मा, विचारशील, विद्वान् बना सकती है और अगर माता चाहे तो उसको कायर, मूर्ख और अज्ञानी बना सकती है। दूसरे शब्दों में कहें तो बालक की प्रवृत्ति माता ही बनाती है। यदि माता अपने उत्तरदायित्व को समझ जाए तो संसार के सभी संकट दूर हो सकते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के संस्कारविधि में बताए हुए निर्देशों का पालन करें तो ऐसी ही गुणवान् और श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त संतान पैदा हो सकती है। सुख देने वाली संतान के विषय में यजुर्वेद में एक मन्त्र आया है कि जो माता-पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य उपदेश के साथ वेद विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त करते हैं, वे उनके शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाले होते है और संतानों के लिए अत्यन्त हितकारी होते हैं। ऐसे माता-पिता की संतानें अपने माता-पिता को सुखयुक्त जीवन देती हैं।

नीतिकार ने बहुत ही सुन्दर कहा है कि वह माता बच्चे की शत्रु है और पिता वैरी है जो अपनी संतानों को अच्छी शिक्षा नहीं देते हैं। अच्छे गुणों से युक्त नहीं करते हैं। ऐसी संतान विद्वानों के बीच में ऐसे ही शोभा नहीं पाती है जैसे हंसों के बीच में बगुला शोभा नहीं पाता है। इसलिए माता-पिता का दायित्व है कि वे अपनी संतानों को उत्तम संस्कार देकर उन्हें सुयोग्य और विद्वान् बनाती है। ऐसे-ऐसे सुन्दर उपदेश माता और पिता को बच्चों को देने चाहिए ताकि सन्तान सदा आज्ञाकारी रहे। माता-पिता को बच्चे के प्रत्येक कार्य पर नजर रखनी चाहिए। उसकी अच्छी और बुरी आदतों का पता करना चाहिए और उसका सुधार करने के लिए सकारात्मक कदम उठाने चाहिए। बच्चों की किसी भी गलती को अनदेखा नहीं करना चाहिए। जो माता-पिता अपने बच्चों की छोटी-छोटी गलतियों से किनारा कर लेते हैं, वे बाद में पछताते हैं। बच्चों और विद्यार्थियों का जीवन बड़ा पुरूषार्थ और निरालस्य होना चाहिए। कष्टों के पहाड़ उपर गिरने पर भी सहनशीलता को प्राथमिकता देनी चाहिए। संघर्ष का दूसरा नाम ही विद्यार्थी जीवन है। जो माता-पिता विद्यार्थी काल से अपने बच्चों का जीवन संघर्षमय बनाते हैं, उन्हें मेहनत का जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं वही बच्चे आगे चलकर महान् बनते हैं और अपने लक्ष्य की ऊँचाईयों को प्राप्त करते हैं। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं उन्होंने अपने जीवन में संघर्ष किया है, कठिन पुरूषार्थ किया है तभी इतने ऐसे महापुरूषों का जीवन हमारे लिए प्रकाश स्तम्भ बन जाता है। जो माता पिता बच्चों का जीवन सुखमय बना देते हैं, उनमें परिश्रम करने की आदत नहीं डालते हैं, वही बच्चे आलसी होते हैं और किसी भी कार्य को करने से घबराते हैं। उनके अन्दर आत्मविश्वास की कमी होती है। ऐसे बच्चे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। किसी विद्वान ने कहा है कि माता के बनाए ही बालक वीर और सपूत बनते है और माता के बिगाड़े बालक कायर और कपूत बनते है।

आज के इस युग में कुछ वर्षों तक इस संसार में मृत्यु के बाद भी जिंदा रहना चाहते हो तो श्रेष्ठ संतान दुनिया को देकर जाओं ताकि आपको दुनिया याद कर सकें। सही हमारा धर्म है। इसलिए माता-पिता का पहला कर्त्तव्य है कि वे अपनी सन्तानों को आत्मविश्वासी बनाएं। उनके अन्दर मेहनत करने की, पुरूषार्थ करने की भावना कूट-कूट कर भरें ताकि वे विपरीत परिस्थितियों में भी धैर्य को बनाएं रखे। यह माता-पिता का परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी संतानों को कैसा बनाना चाहते है? माता-पिता जिस प्रकार का अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं वैसे ही उन्हें स्वयं भी बनना होगा। माता-पिता की जीवन बच्चों के लिए प्रेरणा व आदर्श बन जाए, ऐसा उन्हें प्रयत्न करना चाहिए। जो माता पिता संतान का निर्माण करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं वही सन्तान आज्ञाकारी, गुणवान और धार्मिक बनती है और जो माता-पिता अपने इस कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं उन्हें बाद में जीवन भर पछताना पड़ता है। आज की इस परिस्थिति में सभी माता-पिता अपने-अपने कर्त्तव्य को समझे और अपनी सन्तानों को उत्तम, श्रेष्ठ, चरित्रवान, धार्मिक, गुणवान और आज्ञाकारी बनाएं। तभी इस देश का, इस समाज का भला होगा।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

वेद में ऋत-2

ले.-श्री लालचन्द्र जी

ऋत का अवलंबन दृढ़ है और सर्वश्रेष्ठ है। जिसने ऋतपालन करने का व्रत लिया है, उसमें आत्मबल का विकास होता है। आत्मबल महाबल है। आत्मशक्ति महाशक्ति है। परम ऋतावान् परमात्मा है, जो शाश्वत् काल से अपने नियमों का पालन कर रहा है। इसीलिए तो सृष्टि रचना में तथा विश्व शासन में सुव्यवस्था है और सौन्दर्य है। ऐसी सुव्यवस्थित शासनशैली, जिसमें दया और न्याय प्रेम और सत्य एक साथ अनुपम सौन्दर्य लिए हुए प्रकट रहें हों, अवश्य एक परम चैतन्य और नियामक सत्ता का कार्य है। वह सत्ता सब में ओत प्रोत है। इसलिए वह सत्ता निराकार और निर्विकार होनी चाहिये। शाश्वत् सनातन परमतत्त्व ही में यह सामर्थ्य है कि वह सब में रहे और निर्लेप रहे। आत्माओं पर वातावरण और संस्कारों का प्रभाव पड़ता है, पर उस परमतत्त्व पर किसी का प्रभाव नहीं पड़ता। वह सदा एक रस रहता है। उसमें विकार नहीं होता। वह परमतत्त्व सबका नियामक है और उसमें अनन्त धारणा शक्ति है, तभी तो वह सारे विश्व को धारण किये हुए है। यह विश्व निराधार नहीं है। इसका आधार एक परमतत्व है, जो सारे विश्व का सूत्रात्मा है। जिसमें सभी पदार्थ चर अचर हैं और वह स्वयं सबमें व्यापक है, सभी में विद्यमान है। सभी के हृदयों में वह विराजमान होकर वह सिद्ध कर रहा है कि वह किसी से घृणा नहीं करता, सबका मान रखता है, तभी तो वह हृदयविहारी सबके साथ है। पर उसका साथ ऐश्वर्यवान् इन्द्र जीवात्मा ही अनुभव करता है, जिसने उस परमात्मा के गुण स्वयं धारण किये हैं। वह परमतत्त्व सभी में विराजमान है। परम ऋतावान् होने से भगवान् सदा से ऋत का ही व्यवहार किये जा रहे हैं। वे अपने नियम-पालन में दृढ़ हैं।

वह यज्ञ-पुरुष इस ऋत रूपी सूर्य द्वारा हमारे जगत् को जीवन प्राण दे रहा है। सूर्य में प्रकाश और जीवन-शक्ति उसी परम शक्तिमान् की है। वायु में गति उसी परम वेगवान् की है। जल में तृप्ति और शान्ति उसी पूर्ण और स्वयं तृप्त महादेव की है। विद्युत् में चमक और गति उसी ने दी है। वह ही परम देदीप्यमान स्वयं ज्योतिस्वरूप है। सबका आश्रय वही एक भगवान् है। वह सब में ऋत रूप से विराजमान है और ऋत ही की प्रेरणा दे रहा है। जो व्यक्ति उसकी प्रेरणा को सुनता है, उस प्रेरणा का आदर करता है और तदनुसार जीवन व्यवहार करता है, उसका अभ्युदय और कल्याण साथ साथ होता रहता है।

×æÙß · ¤èÁèßÙ'ØôÙ · ¤ææÂÚæÞæ ç÷ · ¤æè ÁèßÙ¥ ðÙÜØôÙ · ð· ð½ý â ç ¿ Î æÙ×Î Ö»ßæÙ÷ ðâ æ ×ðÙ ¥ ÙÖß · ¤ÚÙðâ ðãÙÙ âØß ãñÐ §â · ¤æâ æ Ù «¤Ù æ çæÚãÙÙ ãñÐ «¤Ù æ çæÚßãÙæÙÙ ÙÙÙU- â ãÙ¥ ðÚÙ ÁèßÙ ÃØßãÙæÙÙ ÁôÇ ¤Ö»ßæÙ÷ · ð¥ Ù×ëÜ ãñÐ¥ Ù×ëÜ ÁèßÙ¿ Øææ ãÙÖ»ßæÙ÷ ¤ææÂØ ÂæÙðô ¤æâ æ Ù ãñÐ Ö»ßæÙ÷ · ¤ææÂØ ÂãæÕÙÙôâ ð ç ¤â è Âý×æÚU· ¤è Öè ‹ØëÙ æÙãÙ ÚÙÙè¥ ðÚU×ÙæØ×ðßƒÙ Õãæ×æ õ · ¤ô ÙCU· ¤ÚÙõ· ¤è çÎ ÃØ àæQ¤ ¥ ÙÖß ãðÙ èãñÐ

°· ¤àæQ×ãñðÁô¥ âæ×æ ðÚÇãÙ ãñÚÇÁâ · ¤æÇÛƒæÙÙ · ¤ÚÙæãÙÙæÙæÙè ŠØØ ãñÐ ©Ù ×ãÙæÙæQ¤ · ð ©ÛØ ãðÙÙãð ×ÙæØ×ðÂæ · ¤æè×Ù · ¤ÚÙõ · ¤æâ æ%ØÙãÙÁ æÙæãñÐ àæQ¤×æ÷ ×ÙæØ©Ù àæQ¤ · ¤æâ ¢Ø «¤Ù æ çæÚU â ð ¤ÚÙæãñÐ â ^Ø, ‹ØæØ¥ ðÚÂØ · ¤æ¥ æ Úßæ×æÙß · ¤ô â àæQ¤¥ ðÚU ÂæÙÕÙÙæè ðæãñÐ©Ù×ð¥ ‹ØÁÙõ · ¤ô â è æÚÙõ · ¤è ÿæÌ æãÙÁ æè «¤Ù · ¤æçÙÚÙÚU¥ æ Úßæ ¤ÚÙõâ ð Áôâ æ%ØÙÂæ ãðÙ æãñÙ©Ù×ðÁô ©Ûâ æU¥ ðÚâ æÙ ©ÛØ ãðÙ æãñÙ Ì Í æÁô©Ù×ð¿ çÚßæÕÜ ãðÙ æãñÙ ßãÙÕÜ ãÙ×ÙæØ · ¤ô â×æ- â è æÚU · ðÂçß˜æ ¤æØ×ðâ È÷Ü · ¤ÚÙæãÐ ¿ çÚßæÕÜ · ¤æâ Î æÔô» ØæãÙ ãñÙ ç ¤×ÙæØ×ð¥ ‹ØÁÙõ · ðâ è æÚU · ¤ÚÙõ ¤è Öè ØôÙØô Ùæ ãðÙ æ §â×ð çÙØ, Ù×ý æ¥ ðÚU çàæÙÚÃØßãÙæÚU · ðâ æ ×ÙæØõ· ¤ô¥ ÂÙØ ßâ ^Ø · ¤è¥ ðÚU¥ æ×çàÙ ç ¤ØæÁ æèæãÐ ©Ù· ð×çSÌ c ¤Ì Í æÑÙØ Î ðÙõ· ¤ô ÂÖæçßÌ · ¤ÚÙõ ©Ù×ð¥ â ^Ø · ¤ô ^Øæ · ¤ÚÙâ ^Ø · ¤ô »ÿÙßæ ¤ÚÙõ×ð Lç¿ ©ÛÁ‹æ ¤è Á æèæãÐ¥ Ùè · ¤ô ^Øæ · ¤ÚÙ©Ù×ð«¤ ×ðÁèßÙ· â×ÂÙßæ ¤è ÂÖÙßæ è Á æèæãÐ¥ ðÚU ©Ù×ðÙãÙ×ðãÙ¥ ‹Ì · ¤æÚU ð¥ æèÚßæ

से निकाल कर ज्योति के तेज आलोक की झलक दिखाई जाती है। समाज-सुधार के लिये तो ऋतावान् ही समर्थ है। ऋत में अनुपम क्षमता है। ऋत में महान् शक्ति है, ऋतावान् में अतुल उत्साह और साहस होता है। वह अमृत का विरोध सफलतापूर्वक कर सकता है। परम ऋतावान् और ऋत के अटल सृष्टि-नियम निभाने में सुप्रसिद्ध भगवान् ही साधक का आदर्श होना चाहिये। उसी परम देव के कर्मों में एक सुख ऋत भी है, जो व्यापक गुण है। साधक का उद्देश्य भी भगवान् है और आदर्श भी भगवान् ही है। धैर्य से आत्म विश्वास धारण किये हुए भगवान् के अनुकूल कार्य करता हुआ साधक पूरी लग्न से उन्नति के पथ पर चलता रहे तो साध्य प्राप्ति निश्चित होती ही है।

ऋताचारी व्यक्तियों के लिए वेद में मिलकर कार्य करने का आदेश है-

ऋतावाना निषेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू।
घृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः।।
ऋ० ८।२५।८।।

सत्य न्याय को जीवन व्यवहार में निभाने वाले, व्रत धारण करने वाले, दुखियों का त्राण करने वाले, वीर जन साम्राज्य के लिए उत्तम कर्म करने वाले एक भावना से मिले और बल ऐश्वर्य को प्राप्त करें।

ऋताचारी को उचित है कि वह सत्य कहे पर मधुर वाणी से कहे। वेद में कहा है-

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं
वक्ता पतिधियो अस्या अदाभ्यः।
दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यम्,
नाम तृतीयमधि रोचने दिवः।।
ऋ० ९।७५।२।।

ऋताचारी की वाणी अति उत्तम हृदय को तृप्त करने वाले आनन्दमय अमृतरसरूप ज्ञान को बहाती है, ऋताचारी की वाणी में अद्भुत माधुर्य और रस होता है, जो हृदयग्राही होता है। सब ही को अपनी ओर आकर्षित करता है। उसकी वाणी में सत्यज्ञान होता है और प्रेम तथा सौहार्द की भावना व्यक्त होती है। इस सत्य वक्ता की वाणी को कभी दबाया नहीं जा सकता। वह बुद्धि का स्वामी होता है। सब कुछ जो कहता है सही कहता है। वह सदा हितकारी तथ्य ही कहता है। ऐसा सत्याचरण करने वाला व्यक्ति अपने माता पिता से भी बढ़कर सबसे अपार दिव्य प्रकाश से युक्त दिव्यधाम में, दिव्य स्थिति में, ज्योतिर्मय कान्ति वाला यश पाता है। ऋताचारी व्यक्ति अपने सदाचार और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से सभी भद्रजनों में आदर पाता है।

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः
ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरातरर्द
कर्ण बुधानः शुचमान आयोः।।ऋ० ४।२३।८।।

ऋत की ही सनातन से चली आई सत्य ज्ञान पूर्ण वाणियाँ हैं। ऋत का धारण और मनन सारे पापों का नाश करता है। ऋत का सुन्दर वचन बहरे कानों तक को छेद देता है। ये वचन उत्तम बोध प्रदान करते हुए मनुष्य को पवित्र कर रहे हैं।

ऋत के मार्ग को भली प्रकार देखकर उस पर चलने से जीवन उन्नत होता है। वेद में कहा है-

ऋतस्य पन्थामनुपश्य साधु
अङ्गिरसः सुकृतो येन यन्ति।
तेभिर्याहि पथिभिः स्वर्गं
यत्रादित्या मधु भक्षयन्ति,
तृतीये नाके अधिविश्रयस्व।।
अथर्व० १८।४।३।।

ऋत के मार्ग को, सत्कर्म की विधि को, यज्ञ की जीवनचर्या को, भली प्रकार समझ, जिस यज्ञमय जीवन को अपने आचरण में उत्तम कर्म करने वाले अपनाते हैं, जिस मार्ग से शुभ कर्म करने वाले जाते हैं। भले लोगों को, सुकृत्य करने वालों को, आदर्श मान कर मनुष्य भले ही काम करे और ऋतुमार्ग से चले, जिससे अपना भला हो और साथ सबका मंगल हो। उन यज्ञ मार्गों को अपनाकर उस सत्य न्याय को जीवन व्यवहार में लाकर मनुष्य आनन्द प्राप्त करें और परम उत्तम स्थिति को प्राप्त होवें। ऋत पथ ऐसा उत्तम है कि उससे मनुष्य समर्थ होता है। उससे यहां अखंड ब्रह्मचारी अखण्ड व्रतधारी नित्य कर्तव्यरत रहते हुए सुमधुर अमृत का आनन्द भोगते हैं। ऋत मार्ग पर चलता हुआ मनुष्य प्रसन्न रहता है और यशस्वी होता है। मनुष्य परम उत्तम अमृत

(शेष पृष्ठ 6 पर)

यज्ञशेष

ले.-श्री नरेन्द्र आहूजा

'यज्ञशेष' एक व्यापक यौगिक अर्थ लिए हुए है। किन्तु समय के साथ इसका अपनी सुविधानुसार हमने सीमित रूढ़ि अर्थ कर लिया है। अब हम यज्ञ के उपरान्त स्विष्टकृत आहुति से बचे हुए मिष्ठान्न अथवा घृत को 'यज्ञशेष' समझते हैं और उसे प्रसादस्वरूप ग्रहण करने मात्र को ही 'यज्ञशेष' की इति मानते हैं। किन्तु यदि हम यज्ञ की व्यापक परिभाषा को जानें और मानें तो देव दयानन्द द्वारा आर्योद्देश्य रत्नमाला में दी गई परिभाषा के अनुसार ''अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान है जो कि जगत के उपकार के लिए किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं।'' इस व्यापक परिभाषा के आधार पर हम आसानी से परोपकार को यज्ञ की श्रेणी में रख सकते हैं। शतपथ ब्राह्मण में भी कहा गया ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' अर्थात् यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है। विषाद में फंसे अर्जुन को गीता का ज्ञान देते हुए योगेश्वर कृष्ण कर्मयोग का महत्व समझाते हुए कहते हैं ''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'' अर्थात् फल की इच्छा किए बिना ही कर्त्तव्य भाव से कर्म करना ही मनुष्य का अधिकार है। इससे यह सिद्ध होता है कि बिना किसी स्वार्थ के निष्काम भाव से किए हुए परोपकार के कार्य ही सर्वश्रेष्ठ कार्य हैं अत: ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' के आधार पर यज्ञीय कार्यों की श्रेणी में आते हैं।

यज्ञ व यज्ञीय कार्यों की परिभाषा को समझने के उपरान्त हम 'यज्ञशेष' के व्यापक अर्थ को आसानी से समझ सकते हैं। यहां 'यज्ञशेष' का स्पष्ट अर्थ यह सिद्ध होता है कि परोपकार के उपरान्त अपने उपयोग के लिए बचा हुआ पदार्थ, समय वा ज्ञान 'यज्ञशेष' कहलाता है जिसे यज्ञीय कर्म करने वाला व्यक्ति अपने जीवनयापन के लिए उपयोग कर सकता है। यज्ञ के उपरान्त बचा हुआ घृत व मिष्ठान्न प्रसाद रूप में 'यज्ञशेष' मानकर ग्रहण करना मात्र एक प्रतीक है जो हमें वेद के 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' के आदेश का पालन करना सिखलाता है अर्थात् ईश्वर द्वारा प्रदत्त समस्त ऐश्वर्यों के भोग की मनुष्य के लिए मनाही नहीं है परन्तु उसके त्यागपूर्वक भोग की स्वीकृति वेद भगवान देते हैं।

यदि प्रकृति के ऐश्वर्यों को अपना जान और मानकर हम अकेले उनका भोग करने के लिए संचय करेंगे तो अंतत: हमारी स्वार्थ की यह भावना हमारे दुखों का कारण बनेगी। जबकि यज्ञशेष में सबको बाँटकर शेष बचे हुए का अपने लिए उपयोग करना हमारी परमार्थ व परोपकार की भावना के कारण हमें हमारे जीवनकाल में ही सुख विशेष व स्वर्ग की प्राप्ति करवायेगी। क्योंकि मनुष्य एक मननशील विचारशील प्राणी है तथा स्वतंत्रकर्ता है, स्वतंत्रकर्ता होने के कारण मनुष्य ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के आधीन अपने किए प्रत्येक कर्म का भोक्ता भी स्वयं है अत: यदि वह निष्काम भाव से परोपकार के यज्ञीय कार्य करेगा तो वह अपने प्रारब्ध में न्यायकर्ता प्रभु की व्यवस्था के आधीन उत्तम नियति यानि सुख विशेष को प्राप्त करेगा।

ऋग्वेद में स्पष्ट आदेश है 'केवलाघो भवति केवलादी'- ऋग्वेद १०/११७/६ अर्थात अकेला खाने वाला पाप खाता है। जबकि बाँटकर खाने वाला 'यज्ञशेष' ग्रहण करता है। इसी भाव को और अधिक स्पष्ट करते हुए अथर्ववेद में आदेश दिया 'शतहस्त समाहर, सहस्रहस्त संकिर'-अथर्ववेद ३/३४/५। यहाँ वेद भगवान जहाँ सैंकड़ों हाथों से कमाने व ऐश्वर्य एकत्र करने की अनुमति देते हैं वहीं उसे हजारों हाथों से कमाने व ऐश्वर्य एकत्र करने की अनुमति देते हैं वहीं उसे हजारों हाथों से बाँटने का भी स्पष्ट निर्देश देते हैं। मनुष्य की पहचान उसके पास उपलब्ध धन ऐश्वर्य ज्ञान को त्यागपूर्वक बाँटते हुए कितना परोपकार का कार्य करता है उस से उसकी समाज में प्रतिष्ठा बनती है।

यहाँ एक उदाहरण से बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। एक व्यक्ति प्रतिदिन सत्संग में आकर पीछे बैठ जाता था। पीछे बैठकर सत्संग सुना करता और एक दिन महात्मा जी के दान पर दिए प्रवचन से प्रभावित होकर उसने त्यागभाव से काफी धनराशि वहीं दान में दे दी। महात्मा जी ने उसे आशीर्वाद देते हुए मंच के पास बुलाया तो वह सहसा कहने लगा 'महात्मा जी यह तो मेरे द्वारा दिए गए धन का सम्मान है न कि मेरा क्योंकि मैं तो कई दिनों से आपके प्रवचन सुन रहा हूँ किन्तु यह सम्मान मुझे आज धन देने के बाद ही मिला है।' उसकी यह बात सुनकर महात्मा जी मुस्कराये और बोले 'वत्स', यह तुम्हारे धन का सम्मान नहीं है। यह धन तो पहले भी तुम्हारे पास था आज भी यहां बैठे बहुत से लोगों के पास है। यह सम्मान तो तुम्हारी उस त्याग भावना का है जिसके कारण परोपकार के कार्यों के लिए तुमने यह धन दान में दिया है।' इससे यह सिद्ध होता है कि त्यागपूर्वक भोग करने वाला सदैव 'यज्ञशेष' ग्रहण करता है और ईश्वरीय न्यायव्यवस्था के आधीन यज्ञीय परोपकार के कार्यों के लिए पुरस्कृत होता, सुख विशेष व स्वर्ग को पाता है यानि उत्तम नियति को प्राप्त होता है।

अत: हमें जीवन में सदैव 'यज्ञशेष' ही ग्रहण करना चाहिए अर्थात् अकेले न खाकर, बाँटकर खाना चाहिए यानि स्वार्थ के वशीभूत जीवन को न जीकर परमार्थ व परोपकार के भाव से जीवनयापन करना चाहिए।

आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर का 54वां वार्षिक महोत्सव 15 मई से

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का 54वां वार्षिक महोत्सव 15 मई से 21 मई 2023 तक सोत्साह पूर्वक आप सबके सहयोग से मनाया जा रहा है जिसमें आर्य समाज आर्य नगर के अलग-अलग परिवारों द्वारा अपने परिवार के साथ यजमान पद पर सुशोभित होकर यज्ञ में आहुतियाँ व वेद कथा का आयोजन करवाया जा रहा है। कायक्रर्म 15 मई से 20 मई तक सायं 7.00 बजे से 10.00 बजे रात्रि तक होगा जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा के सुविख्यात भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के भजन व सभा के ही महोपदशेक श्री विजय शास्त्री जी के वेदोपदेश सुनने का सुअवसर मिलेगा। प्रतिदिन रात को ऋषि भोज की भी व्यवस्था होगी। 21 मई 2023 को विशेष कार्यक्रम प्रात: 8.00 बजे से दोपहर 2.00 बजे तक होगा जिसकी अध्यक्षता दयानन्द मठ दीनानगर के अध्यक्ष स्वामी सदानन्द जी करेंगें। इस पावन अवसर आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री सुदर्शन शर्मा जी, महामंत्री श्री प्रेम कुमार जी एवं अन्य पदाधिकारीभी सम्मिलित होंगें। सभी आर्य जनों से करबद्ध प्रार्थना है कि आप सभी इस पावन अवसर पर सपरिवार पधारने की कृपा करें एवं धर्म लाभ उठावें।

वेद आर्य
प्रधान आर्य समाज

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

शान्ति कैसे प्राप्त हो? (वैदिक दृष्टिकोण)

ले.-श्री पं० सत्यभूषण जी वेदालंकार

आज संसार के सभी लोग सुख, शान्ति चाहते हैं, सबका उद्देश्य सुख, शान्ति है। संसार का शायद ही कोई व्यक्ति, समाज व राष्ट्र हो जो दुःख चाहता हो, परन्तु सुख, शान्ति की प्राप्ति के लिये जो साधन किये जाते हैं, क्या उससे वास्तविक शान्ति उपलब्ध हो सकती है? क्या वर्त्तमान जगत् इस प्रकार के ऐहिक भौतिक साधनों से उस चरम शान्ति के लक्ष्य तक पहुँच सकता है? सांख्यकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा है-"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" आधिदैविक, आधिभौतिक, अध्यात्मिक तीनों प्रकार के दुखों की आत्यन्तिकी निवृत्ति मनुष्य का अत्यन्त पुरुषार्थ है। तो क्या इस दुःख निवृत्ति के लिये केवल भौतिक सुख साधन ही पर्याप्त हैं? यह एक गम्भीर प्रश्न है, जिसका उत्तर आधुनिक ज्ञान विज्ञान के शिखर पर आसीन पाश्चात्य देशों के पास नहीं है। इसके साथ ही कुछ लोगों का यह विचार भी है, कि यह प्राकृतिक जगत् सर्वथा मिथ्या है। "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" हम इस विचार को आर्य संस्कृति के दृष्टिकोण के अनुसार अदूरदर्शितापूर्ण समझते हैं। फिर सत्य क्या है? किस विचारधारा पर चलने से मनुष्य को आनन्द की प्राप्ति हो सकती है? वैदिक दृष्टिकोण के अनुसार प्रकृति को साधन मानकर उसका भली भांति उपयोग करते हुए प्रकृति से परे आत्मतत्त्व को जानकर परमात्मा तक पहुँचने से ही परम शान्ति उपलब्ध हो सकती है। आत्मतत्त्व प्रकृति तथा शरीर के समान एक यथार्थ सत्ता है। प्रकृतिवादी केवल प्रकृति को चरम लक्ष्य समझता है, पर आत्मवादी प्रकृति से परे भी आत्मा की सत्ता को स्वीकार करता है। इस कारण उपनिषद् के ऋषि ने पुकार पुकार कर कहा है-आत्मा वा अरे श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। इसका यह मतलब नहीं, कि आत्मवादी प्रकृति की सत्ता को स्वीकार ही नहीं करता, मानता ही नहीं; परन्तु उसका कथन है, कि प्रकृति और शरीर की सत्ता है, पर उनका उपभोग साधन के ही रूप में करना चाहिये, साध्य के रूप में नहीं। शरीर, प्रकृति आत्मा नहीं है, आत्मा का साधन है। जैसे रथ पर चढ़ने वाला रथ से भिन्न है।

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु"।

आत्मा को रथी जानो, शरीर को रथ। मकान में बिस्तर बिछा हुआ हो, तो क्या समझा जाएगा? बिस्तर बिस्तर वाले के सोने के लिये है, या किसी अन्य के लिये। सांख्यकार ने यही उदाहरण देते हुए कहा है, कि जैसे बिस्तर पर सोने वाला बिस्तर से अलग है, ठीक इसी प्रकार आत्मा शरीर से, प्रकृति से अलग है। आत्मा भोक्त है, शरीर भोग्य है। आत्मा रथी है, शरीर रथ। अतः यह स्पष्ट है, कि शरीर आत्मा के भोग का साधन है, साध्य नहीं। शरीर मकान है, आत्मा उस मकान का मालिक है, स्वामी है। पर हम मकान को ही मकान का मालिक समझे बैठे हैं। अतः ऋ० १।१६४।२०। में प्रकृति, पुरुष तथा आत्मा का वर्णन करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा है-

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्यो अभिचाकशीति।।

एक साथ रहने वाले दो मित्र-पुरुष और परमात्मा-एक प्रकृति रूप वृक्ष का सेवन कर रहे हैं। उनमें से एक इस वृक्ष का रस ले रहा है, दूसरा इसे न खाता हुआ केवल उदासीन भाव से देखता ही रहता है। मनुष्य प्रकृति को ही साध्य समझ कर अपने को मिटा रहा है। वेद कहता है, नहीं, प्रकृति एवं शरीर को साध्य नहीं, साधन समझो। संसार के भोगों को भोगते हुए भी जल-कमल के समान निर्लिप्त रहो।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

आत्मा द्रष्टा है, परन्तु जब संसार के दृश्यों में फंसकर अपने को भूल जाता है, तो दृश्य बन जाता है, आत्मा श्रोता है, मन्ता है, पर संसार के मधुर शब्दों को सुन कर तथा आकर्षक विचारों में लीन होकर श्रव्य तथा मन्तव्य बन जाता है। ठीक यही दशा आजकल संसार की है। साधन को साध्य समझ लेने से सुख, शान्ति की उपलब्धि कहां? यह मकान मेरा है, धन दौलत मेरी है, इसे साध्य समझ लेने की भावना ने हमें पंगु बना रखा है। प्रकृति का, शरीर का हमारे ऊपर पूरा आधिपत्य है। वेद कहता है कि प्रकृति का, शरीर का भोग करो, पर साधन के रूप में, साध्य रूप में नहीं। गीता के शब्दों में-

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहंकारविमूढ़ात्मा कर्त्ताहिमिति मन्यते।।

आत्मा को प्रकृति के आश्रय की आवश्यकता है, पर वह अपने को प्रकृति ही न समझने लगे। इसी कारण वेद का कथन है, "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः" संसार का उपभोग करो त्याग-भाव से। अतः आर्यों का यह नियम था, कि जीवन के पचास वर्षों के पश्चात् वे वानप्रस्थ वा संन्यास धारण कर लिया करते थे। परन्तु आज हमने इसे भौतिक शरीर, प्रकृति को ही आत्मा समझ रखा है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि किसी चित्र को देखकर कोई पुरुष उसे ही वास्तविक समझ ले। अतः यदि सुख, शान्ति की इच्छा है, तो वेद का यही उपदेश है, कि प्रकृति से परे आत्म-तत्त्व को जानो, प्रकृति को साधन समझो, साध्य नहीं।

पृष्ठ 4 का शेष-वेद में ऋत-2

लोक में, स्वर्ग में परम आनन्द की स्थिति में रहे। ऋत पथ में परम सुख है परम शान्ति है।

ऊषा के पहले जागकर भगवान् की आराधना करने के बाद शुभचिन्तन करने से कल्याणकारी संकल्प उदय होता है। इस भाव को कैसी सुन्दरता से वेद में दर्शाया है-

ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना
भद्रं भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छ
अस्मासु रायो मघवत्सु च स्युः।।

हे उषा! तू सूर्य की किरण के अनुकूल प्रकाश फैलाती हुई उसमें सत्यज्ञान के पावन प्रकाश को अति सुख और कल्याणजनक यशरूप धर्माचरण सत्कर्म को हममें धारण करा। उषा से पहले भगवान् के गुणों का चिन्तन मानव हृदय में और मन में उत्तम भाव और संकल्प उदय करता है। हे उषा! तू आज उत्तम समर्पण की भावना से युक्त हमारे बीच से अज्ञान अन्धकार का नाश कर और हममें सब प्रकार के सामर्थ्य में गतिशील धन हो। हमारा धन गतिशील हो। उससे हमारा तथा समाज का अभ्युदय हो। हमारा धन, ऐश्वर्य बने, अपने धन पर हमारा अधिकार हो, हम धन के स्वामी हों। हमारा ऐश्वर्य हमें समर्थ बनावे और हम समर्पण करने वाले तत्परता और लग्न से कार्य करने वाले हों। अपने धन पर अपना स्वत्व हो, हमारा धन हमारे लिए बल, शक्ति, उत्साह, साहस, पराक्रम और उन्नति का साधन बने। हम सब प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हों, साधन-संपन्न हों।

ज्ञानवान् मनुष्य ऋत की योग्य प्रेरणाओं से सबका सच्चा हित करे। वेद में कहा है-

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिः
घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व
अथावह देवान् देव विश्वान्
स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः।।
ऋ० ३।६।६।।

हे प्रज्ञावान् मनुष्य! तू संयमी परस्पर स्नेही, अनुरागरत सन्तानों वाले स्त्री पुरुषों को परिवारों को, ऋत की योग्य प्रेरणाओं से सर्वहितकर सर्वमंगल के कार्यों में नियुक्त कर, और हे दिव्य गुणधारी मनुष्य! तू सारे दिव्यजनों को उत्तम उद्देश्य तक ले आ और उन्हें उत्तम रीति से परस्पर की हिंसा से रहित सौम्य स्वभाव वाला बना।

पूजनीय ज्ञानीजनों से ही ऋत के मार्ग का ज्ञान होता है, यह भाव वेद ने कैसे सुन्दर शब्दों में दर्शाया है-

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षान्
ऋतस्य पस्त्यसदो अदब्धान्।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो
नॄन् विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः।। ऋ० ६।५१।९

हे पूजनीय ज्ञानशील जनो! मैं उत्तम मार्ग में गमन करने का इच्छुक आपको जो न्याय और सत्यमार्ग में चलने वाले हैं, पवित्र कर्म करने वाले हैं, सुन्दर स्वभाव वाले हैं, बिना संकोच के सत्य न्याय का आचरण करने वाले दूरदर्शी विवेकी हैं, सभी को जिनमें दूसरों को सन्मार्ग पर चलने का सामर्थ्य है, श्रद्धा से नमस्कार करता हूँ।

धर्मपथ के पथिक को धर्मात्मा लोगों के पास पहुँचना चाहिये और उनसे विनय से, नम्रता से, सच्ची जिज्ञासा से सत्यज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो अनुभवी हैं, जिन्होंने सत्य न्याय का स्वयं आचरण निरंतर किया है, वे ही सत्य न्याय पर जिज्ञासु जनों को चला सकते हैं। जिनके व्यवहार में ऋत और सत्य हैं, जो सबसे धर्मयुक्त प्रेम व्यवहार कर रहे हैं, वे ही धर्ममार्ग पर अन्य लोगों को चलाने में समर्थ होते हैं।।

पृष्ठ 2 का शेष-कर्म का सिद्धान्त

परिचय मिलता है, जो काव्यों से कहीं उच्चतर है। जो मनुष्य काव्यों को मात्र जड़ समझकर कालिदास के निज गुणों का पता लगाना नहीं चाहता, वह अधूरा है और प्रमुख लाभ से वंचित रह जाता है। यह ठीक है कि ईश्वर हमारे किये हुये कर्मों का उतना ही फल देगा कम या अधिक नहीं, परन्तु ईश्वर के व्यवस्थापक होने का विश्वास जीव में अन्य गुणों के धारण करने की योग्यता भी प्राप्त करायेगा, जो उसके भावी कामों पर प्रभाव डालेगी। ईश्वर को भूल कर केवल जड़-व्यवस्था को मानने वाले जड़वादी होकर अन्ततोगत्वा जड़ात्मक हो जाते हैं। और उनमें आध्यात्मिक सम्पर्क की कमी हो जाती है।

प्रश्न (१२)-क्या ईश्वर हमारे समाज के किये हुये शुभ या अशुभ कर्मों का हमको फल नहीं देता?

उत्तर-समाज तो आपका स्वयं नियत किया हुआ है। आपकी अपनी कल्पना या व्यवस्था के अनुसार आपके समाज की भी सीमा है। समाज में तो अनेकों व्यक्ति होते हैं। अत: यदि समाज के शुभ या अशुभ कर्मों का आपको फल मिलने लगे तो घोर अन्याय हो जाए। प्रथम तो हर व्यक्ति का वश नहीं कि समाज के अन्य व्यक्तियों पर आधिपत्य कर सकें। जिस पर मेरा वश नहीं, उस के कर्मों का फल मुझे क्यों मिले? ईश्वर की व्यवस्था, ईश्वर के अन्याय और ईश्वर की दया तीनों में ऐसी बात बाधक होगी। अत: कर्म-फल का सिद्धान्त यही बताता है कि तुम जैसा करोगे वैसा पाओगे। 'तुम' का अर्थ है 'तुम व्यक्ति' न कि तुम से अन्य व्यक्ति। चाहे वह आपके समाज या देश के हों चाहे बाहर के।

प्रश्न (१३)-क्या हम नहीं देखते कि हमारे मित्र हमको विपत्ति में सहायक होते हैं और हमारे शत्रु हमारे दु:खों को बढ़ाते हैं?

उत्तर-यदि आप ईश्वर की व्यवस्था और ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखते हैं तो मानना पड़ेगा कि आपको आपके ही कर्मों का फल मिलेगा, अन्य किसी का नहीं। वह व्यवस्था-व्यवस्था नहीं कहलायी जा सकती, जिसके भीतर बिना दोष के कोई आपको सताने में सफल हो सके या कोई मित्र आपको वह चीज़ भी दिला सके, जिसके आप अधिकारी नहीं।

प्रश्न (१४)-आप हमारी आँखों में धूल डालना चाहते हैं। क्या हम नित्यप्रति नहीं देखते कि मित्र हमारा हित करते हैं और शत्रु अहित?

उत्तर-बिगड़ने की कोई बात नहीं। सोचिये! या तो यह मानिये कि ईश्वर की व्यवस्था इतनी अधूरी है कि कोई व्यक्ति को वह सुख या दु:ख भी प्राप्त करा सकता है जिसका वह अधिकारी नहीं, अथवा यह मानिये कि संसार में कोई न व्यवस्था है न व्यवस्थापक, अंधेर नगरी है, जिसकी लाठी उसकी भैंस।

प्रश्न (१५)-हम ईश्वर की व्यवस्था को भी स्वीकार करते हैं और मित्र वा शत्रु के हित तथा अहित को भी।

उत्तर-इन दोनों भावनाओं का समन्वय कैसे होगा?

प्रश्न (१६)-यह समन्वय तो स्पष्ट है। यदि कोई शत्रु हमारा अहित करेगा तो ईश्वर उसे दण्ड देगा। इस प्रकार शत्रु का अहित भी सिद्ध हो गया और ईश्वर की व्यवस्था भी।

उत्तर-आपने व्यवस्था का अर्थ ही नहीं समझा। जिस समय किसी शत्रु ने आपका अहित किया, उस समय आप उस अहित के अधिकारी थे या नहीं? यदि अधिकारी थे तो शत्रु के अहित करने का प्रश्न नहीं उठता। और यदि अधिकारी न थे और आपको दु:ख मिला तो इसका अर्थ यह है कि बिना कुकर्म किये हुये भी दु:ख मिल सकता है। इससे ईश्वर की कुव्यवस्था का परिचय होता है। उस सरकार को आप अच्छा नहीं कह सकते, जहाँ चोरियाँ अधिक हो सकतीं हों, चाहे चोरों को घोर दण्ड ही क्यों न दिया जाता हो।

प्रश्न (१७)-तो क्या आप यह नहीं मानते कि मित्र हित करते हैं और शत्रु अहित।

उत्तर-हमारे मानने का प्रकार दूसरा है। हमारे सिद्धान्त में मित्र हितचिन्तन कर सकते हैं। हित करने का भरसक यत्न भी कर सकते हैं। इसी प्रकार शत्रु अहित-चिन्तन भी कर सकते हैं और अहित करने का भरसक प्रयत्न भी कर सकते हैं, परन्तु ईश्वर की सुव्यवस्था के कारण न तो शत्रु ही अनधिकृत अहित करने में सफल हो सकता है, न मित्र अनधिकृत हित करने में। हम नित्य देखते हैं कि हमारे मित्र और स्वजन हमारा भला चाहते ही रहते हैं, फिर भी हमको दु:ख मिलता है। और हमारे शत्रु नित्य हमारे दु:ख के साधन जुटाते रहते हैं फिर भी हम दु:खों से बच जाते हैं।

हमने प्रश्न सात के उत्तर में स्पष्ट कर दिया है कि हमारे मित्र या शत्रु हमारे सुख दु:ख के कारण नहीं, निमित्त मात्र हैं। कारण और निमित्त में भेद है। निमित्तों का रूपान्तर हो सकता है। कारणों का नहीं। एक साधारण लौकिक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। यदि किसी विशेष चोरी की सजा ६ मास की क़ैद है तो क़ैद का कारण यह चोरी है। जेल कानपुर की हो या फैज़ाबाद की यह निमित्त मात्र है। फल का कारण तो नियत कर्म ही है। फल-प्राप्ति के रूप या निमित्त अनेक हैं। जो निमित्त और मूल कारण का भेद नहीं समझते, वे उलझनों में पड़ जाते हैं।

[अब आगे पढ़िये-देश और जाति के कर्मों का कर्मफल कैसे मिलता है? जीव कर्म करने में स्वतन्त्र फल पाने में परतन्त्र का क्या मतलब है? क्या मनुष्य ईश्वर के हाथ में खिलौना है। जीवों में बुद्धि भेद क्यों? पशु भोगयोनि व कर्मयोनि?]

प्रश्न (१८)-लोग कहा करते हैं कि जैसे व्यक्ति के कर्मों का व्यक्ति को सुख या दु:ख मिलता है इसी प्रकार देश या जाति के कर्मों का देश और जातियों को सुख या दु:ख मिलता है।

उत्तर-यह बात बिना विचारे मोटे रूप से कह दी जाती है। यह भी कारण और निमित्त के अविवेक से होता है। जैसे मेरे शरीर में मेरा जीव है या आपके शरीर में आपका, उसी प्रकार देश के शरीर में देश का जीव या जाति के शरीर में जाति का जीव नहीं। न कोई ऐसा जीव है, जो सामूहिक जीवों का प्रतिनिधि कहा जा सके। अर्थात् जैसे व्यक्तियों के शरीरों में व्यक्तिगत जीव हैं उसी प्रकार देश में रहने वाले दस करोड़ या एक जाति में रहने वाले दो करोड़ जीवों का कोई एक विशेष जीव नहीं, जिसको परमात्मा उसके कर्मों के अनुसार फल दे सकता हो। हम ऊपर कह चुके हैं कि देश या जाति की सीमा कल्पित है। जिस को आज आप अपना देश या जाति कहते हैं, वह कल बदल जाती है। यह सीमायें प्राकृतिक या ईश्वरकृत नहीं। मनुष्य भी कल्पनाकृत हैं। कर्मफल व्यवस्था मनुष्य की कल्पित नहीं। यदि कल्पित होती तो मनुष्य कभी ऐसी व्यवस्था न बनाता। कर्मफल का सिद्धान्त तो नैसर्गिक और अटल है। यह मनुष्य की मनमानी बात नहीं।

प्रश्न (१९)-संसार में बहुत से लोग हैं, जो कर्म के सिद्धान्त को भूल-भुलैया कहते हैं और उस पर विश्वास नहीं रखते।

उत्तर-मूल सिद्धान्तों से तो कोई इन्कार नहीं करता। सब मानते हैं कि जो जैसा करता है, वह वैसा पाता है। नास्तिक से नास्तिक लोग भी सदाचार की इस मौलिक भित्ति का निषेध नहीं करते। यदि यह सिद्धान्त न माना जाए तो संसार का एक मिनट भी काम नहीं चल सकता। हाँ शाखारूप में जो प्रश्न उठ खड़े होते हैं, उन प्रश्नों का भिन्न-भिन्न लोग भिन्न भिन्न उत्तर देते हैं। कुछ लोगों ने कुछ कल्पित धारणायें बना रखी हैं। वे धारणायें उनको ठीक सोचने में सहायता नहीं देतीं। अर्थात् यदि किसी ने पहले से यह मान रखा है कि ईश्वर नहीं है, या जीव अजर, अमर या अजन्मा नहीं है या पुनर्जन्म नहीं होता तो इन कल्पनाओं की उपस्थित में उस में आगे कर्म के सिद्धान्त को मानने में बाधा पड़ेगी। परन्तु फिर भी उसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि शुभ कर्म का फल अच्छा होता है और अशुभ का बुरा। संभव है कि शुभ-अशुभ कर्मों के लक्षणों में वह भेद करे, परन्तु कर्मफल के मौलिक सिद्धान्त तो सर्वतंत्र ही हैं। एक नास्तिक भी अपने पुत्र को खोटे कर्म करने पर सजा देता है और कहता भी है कि "तूने अपराध किया। तुझको दण्ड मिलेगा।" यह भी तो कर्मफल ही है।

आर्य समाज गांधी नगर-1 जालन्धर का वार्षिक उत्सव धूमधाम से सम्पन्न

आर्य समाज वेद मंदिर गांधी नगर-1 जालन्धर का वार्षिक उत्सव एवं स्थापना दिवस 20 अप्रैल से 23 अप्रैल 2023 तक बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर आर्य समाज के सदस्य हवन यज्ञ करते हुये जबकि चित्र दो एवं तीन में आर्य समाजों से पधारे हुये महानुभाव।

आर्य समाज वेद मंदिर गांधी नगर-1 जालन्धर का वार्षिक उत्सव एवं स्थापना दिवस 20 अप्रैल से 23 अप्रैल 2023 तक बड़े धूमधाम से मनाया गया। इस बीच प्रतिदिन पारिवारिक सत्संगों का आयोजन भी किया गया। इस कार्यक्रम में श्री सुरेन्द्र आर्य जी एवं श्री राजेश अमर प्रेमी के मधुर भजन हुये जबकि पंडित विजय कुमार शास्त्री जी के वेदों पर आधारित प्रवचन होते रहे। मुख्य कार्यक्रम 23 अप्रैल रविवार को आर्य समाज के प्रांगण में प्रारम्भ हुआ जिसमें सुबह 9.00 बजे शांति यज्ञ पंडित विजय कुमार शास्त्री जी एवं पंडित प्रिंस के ब्रह्मत्व में प्रारम्भ हुआ जिसमें पवित्र वेद मंत्रों के साथ हवन यज्ञ में यजमानों ने आहुतियां प्रदान की। मुख्य कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री कमल किशोर जी प्रधान आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर ने की। ध्वजारोहण श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट रजिस्ट्रार आर्य विद्या परिषद पंजाब के कर-कमलों द्वारा किया गया। श्री अशोक परूथी जी एडवोकेट ने अपने सम्बोधन में कहा कि आर्य समाज की स्थापना करके महर्षि दयानन्द सरस्वती जी एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जहां पर किसी के साथ कोई भेदभाव न हो। जाति, मत, पन्थ और सम्प्रदाय की तरह कोई व्यवहार न करे। सभी समान विचार वाले होकर सबके कल्याण के लिए मिलकर कार्य करें। समान विचार वाले होकर राष्ट्र की उन्नति के लिए कार्य करें। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने द्वारा स्थापित समाज को आर्य समाज का नाम दिया। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ होता है अर्थात् जिनके विचार शुद्ध, आचार शुद्ध, व्यवहार और खान-पान शुद्ध होता है वही व्यक्ति आर्य कहलाने का अधिकारी है।

उन्होंने कहा कि स्वामी दयानन्द भारत को राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक रूप से एकसूत्र में बांधना चाहते थे। एक राष्ट्र का रूप देने के लिए उन्होंने भारत को विदेशी शासन से मुक्त कराना चाहा। सामाजिक दृष्टि से देशवासियों को एक करने के लिए उन्होंने प्रचलित मतों के स्थान में वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म को स्थान देने की कामना की थी। स्वामी दयानन्द को इन दोनों उद्देश्यों में सफलता मिली। समाज सुधार के क्षेत्र में आर्य समाज ने अद्भुत सेवा की। स्त्रियों की दुर्दशा के निवारण के लिए महर्षि दयानन्द ने बड़ी उदारता और वीरता के साथ कार्य किया।

आर्य समाज ने अपने स्थापना काल से ही सबसे अधिक कार्य शिक्षा के क्षेत्र में किया है। इस समय भारत में सरकार के पश्चात शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा स्थान आर्य समाज एवं डी.ए.वी. शिक्षण संस्थाओं का है। आर्य समाज ने न केवल स्कूल, कॉलेज की खोले, अपितु गुरूकुलों की स्थापना कर प्राचीन शिक्षा पद्धति को भी नवजीवन प्रदान किया। शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज ने एकांगी कार्य नहीं किया। आर्य समाज ने नारी शिक्षा की ओर भी न केवल ध्यान ही दिया अपितु उसे प्राथमिकता प्रदान की। इसी के परिणामस्वरूप आज शिक्षा के क्षेत्र में आर्य समाज की अग्रणी भूमिका है। आर्य समाज की स्थापना करने के पश्चात महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के जो दस नियम बनाए, उनमें उन्होंने अपना लक्ष्य निर्धारित करते हुए छठे नियम में लिखा कि संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। वेद में कहा गया है कि संसार को उन्नत करो। यह नियम ऐसा अद्भुत और अनोखा है जो संसार के किसी संगठन में नहीं पाया जाता। प्रत्येक समाज अपने समान विचार वाले लोगों को प्रमुखता प्रदान करता है। जैसे मुसलमान और ईसाई अपने-अपने सम्प्रदाय की स्थापना करके उसका विस्तार करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। इसके विपरीत वैदिक धर्म संसार के लिए है। संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है। आर्य समाज किसी एक देश या जाति विशेष से सम्बन्धित नहीं हैं । एक आर्य के लिए आर्य समाज के सदस्य ही नहीं अपितु संसार के दूसरे व्यक्ति, व्यक्ति ही नहीं सम्पूर्ण प्राणीमात्र सहानुभूति, दया और प्रेम के पात्र हैं।

उन्होंने आगे कहा कि आर्य समाज के सिद्धान्त और नियम सार्वभौम हैं। आर्य समाज के नियम वेदों पर आधारित हैं। इन नियमों में किसी एक की उन्नति नहीं परन्तु सबकी उन्नति की कामना की जाती है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के नौवें नियम में लिखा कि-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का उद्देश्य सारे संसार का कल्याण करना था । वे किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं अपितु सर्वे भवन्तु सुखिनः की भावना को लेकर कार्य करते थे। यही कारण है कि आर्य समाज ने सभी क्षेत्रों में कार्य किया। आर्य समाज किसी के दबाव में नहीं आया और गलत का खुलकर विरोध किया। इसी कारण से आर्य समाज एक समाज सुधारक के रूप में सामने आया। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री कमल किशोर जी ने सभी को आह्वान किया हमें आर्य समाज के प्रचार प्रसार में बढ़ चढ़ कर भाग लेना चाहिये ताकि वेद प्रचार का कार्यक्रम अधिक से अधिक हो सके। उन्होंने यज्ञ की महिमा को बताते हुये कहा कि यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म।

इस कार्यक्रम में आर्य समाज गांधी नगर-2 जालन्धर, आर्य समाज कबीर नगर जालन्धर, आर्य समाज बस्ती बाबा खेल जालन्धर, आर्य समाज बस्ती दानिशमंदा जालन्धर, आर्य समाज दयानन्द चौक गढ़ा जालन्धर, आर्य समाज आर्य नगर जालन्धर, आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर जालन्धर, आर्य समाज संत नगर जालन्धर के पदाधिकारी एवं सदस्यों ने भी बढ़ चढ़ कर भाग लिया। इस कार्यक्रम में उत्तरी हल्का के विधायक बाबा हैनरी, श्रीमती अंजलि भगत पार्षद, श्री कृष्ण लाल भंडारी पूर्व विधायक, श्री मनोहर लाल आर्य मुसाफिर, आर्य समाज गांधी नगर-1 जालन्धर के प्रधान श्री राजपाल जी ने सभी आए हुये महानुभावों का धन्यवाद किया और शांति पाठ के पश्चात कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। अंत में सभी आए हुये महानुभावों ने ऋषि लंगर का आनन्द लिया।

ईशर दास सपरा प्रचार मंत्री

वेदवाणी

जय-विजय के प्रदाता परमात्मा

स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्य ओजसा जनेभ्यः।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम्।।

-ऋ० १।५५।५

ऋषिः-**सव्य आङ्गिरसः।।** देवता-**इन्द्रः।।** छन्दः-**जगती।।**

विनय-किसी लड़ाई में, किसी जीवन-सङ्घर्ष में, जब मनुष्य को विजय मिलती है तो वह फूला नहीं समाता है। वह समझता है मेरे शस्त्र-बल की या तपोबल की विजय हुई, परन्तु संसार के सब महासंग्रामों के विषय में जो सच्चा रहस्य है, उसे विरले ही मनुष्य समझते हैं। सच तो यह है कि संसार की सब सच्ची (अन्तिम) विजय परमात्मा की ही विजय हैं। हम अधिक ज्ञान-प्रकाश में होकर देखें तो हमें दीखेगा कि वह परमेश्वर ही महायोद्धा होकर हम मनुष्यों के लिए सब संग्रामों को लड़ रहा है। मनुष्य की स्वार्थमयी आसुरी प्रवृत्ति के कारण संसार में सब लड़ाइयों के प्रसङ्ग उपस्थित हो रहे हैं और जगदीश्वर की दैवी शक्ति उसे अन्त में विजित करके उसे शान्त कर रही है। मनुष्य की न्यूनता पर परमेश्वर की पूर्णता विजय पा रही है। हमें जो यह दीखता है कि बहुत-से मनुष्य सत्य के पक्ष में महासंग्राम लड़ रहे हैं, असल में सत्यप्रेमी मनुष्यों के लिए स्वयं भगवान् वह युद्ध कर रहे होते हैं और अतएव उसमें विजय अवश्यंभावी होती है। परमात्मा का पवित्रताकारक ओज ही लड़कर जगत् में सदा विजयी हो रहा है। सत्य के लिए युद्ध करने वालों को तो सदा समझना चाहिए, स्पष्ट देखना चाहिए कि उनका योद्धा स्वयं जगदीश्वर ही है (सः इत्), अहङ्कार से विमूढ़ात्मा हुए मनुष्य यूँ ही अपनी विजयी समझते हैं। अन्त में जब उनका अहङ्कार का पर्दा हटता है और जगद्-व्यापक ज्योति मिलती है तभी उन्हें इस वास्तविक सत्य में श्रद्धा जमती है। तब उन्हें पाप के विजयी होने का भी भ्रम नहीं होता, क्योंकि उन्हें तब इन युद्धों की महत्ता (महानि समिथानि) स्पष्ट दिखाई देती है, अतः अधूरे युद्ध में पाप की क्षणिक विजयों से वे भ्रम में नहीं आते, उनकी श्रद्धा में तनिक भी धक्का नहीं लगता। अपने उस निर्बाध व्यापक प्रकाश में उन्हें सब संग्रामों का यह सच्चा रूप दृष्टिगोचर हो रहा होता है कि एक और मनुष्यों के स्वार्थ दूसरों के नाना प्रकार से हिंसन (वध) करने के रूप में उठ रहे हैं, परन्तु जहाँ तक उनको स्वाधीनता है वहाँ तक उठकर वे सब दूसरी और महातेजस्वी इन्द्र के ओज के सामने नष्ट होते जा रहे होते हैं-इन्द्र का पापवर्जक, कर्मफल देने वाला वज्र उनके वध का ही वध करता हुआ सदा समता स्थापित कर रहा है।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**